Chapter दस

सृष्टि के विभाग

विदुर उवाच

अन्तर्हिते भगवति ब्रह्मा लोकपितामहः ।
प्रजाः ससर्ज कतिधा दैहिकीर्मानसीर्विभुः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

विदुरः उवाच—श्री विदुर ने कहा; अन्तर्हिते—अन्तर्धान होने पर; भगवति—भगवान् के; ब्रह्मा—प्रथम उत्पन्न प्राणी ने; लोक-पितामहः—समस्त लोकवासियों के दादा; प्रजाः—सन्तानें; ससर्ज—उत्पन्न किया; कतिधाः—कितनी; दैहिकीः—अपने शरीर से; मानसीः—अपने मन से; विभुः—महान्।.

श्री विदुर ने कहा : हे महर्षि, कृपया मुझे बतायें कि लोकवासियों के पितामह ब्रह्मा ने अन्तर्धान हो जाने पर किस तरह से अपने शरीर तथा मन से जीवों के शरीरों को उत्पन्न किया?

ये च मे भगवन्पृष्टास्त्वय्यर्था बहुवित्तम ।
तान्वदस्वानुपूर्व्येण छिन्धि नः सर्वसंशयान् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

ये—वे सभी; च—भी; मे—मेरे द्वारा; भगवन्—हे शक्तिशाली; पृष्टाः—पूछे गये; त्वयि—तुमसे; अर्थाः—प्रयोजन; बहु-वित्-तम—हे परम विद्वान; तान्—उन सबों को; वदस्व—कृपा करके वर्णन करें; आनुपूर्व्येण—आदि से अन्त तक; छिन्धि—कृपया समूल नष्ट कीजिये; नः—मेरे; सर्व—समस्त; संशयान्—सन्देहों को।.

हे महान् विद्वान, कृपा करके मेरे सारे संशयों का निवारण करें और मैंने आपसे जो कुछ जिज्ञासा की है उसे आदि से अन्त तक मुझे बताएँ।

तात्पर्य : विदुर ने मैत्रेय से सारे प्रासंगिक प्रश्न पूछे, क्योंकि वे अच्छी तरह जानते थे कि मैत्रेय उनकी जिज्ञासाओं के सारे बिन्दुओं का उत्तर देने के लिए उचित व्यक्ति हैं। मनुष्य को अपने शिक्षक की योग्यताओं पर पूर्ण विश्वास होना चाहिए और विशिष्ट आध्यात्मिक प्रश्नों के लिए किसी अभिज्ञ व्यक्ति के पास नहीं जाना चाहिए। जब शिक्षक से ऐसे प्रश्नों का काल्पनिक उत्तर मिले, तो यह समय का अपव्यय मात्र है।

सूत उवाच

एवं सञ्चोदितस्तेन क्षत्त्रा कौषारविर्मुनिः ।
प्रीतः प्रत्याह तान्प्रश्नान्हृदिस्थानथ भार्गव ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—श्री सूत गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; सञ्चोदितः—प्रोत्साहित हुआ; तेन—उसके द्वारा; क्षत्त्रा—विदुर से; कौषारविः—कुषार का पुत्र; मुनिः—मुनि ने; प्रीतः—प्रसन्न होकर; प्रत्याह—उत्तर दिया; तान्—उन; प्रश्नान्—प्रश्नों के; हृदि-स्थान्—अपने हृदय के भीतर से; अथ—इस प्रकार; भार्गव—हे भृगु पुत्र।

सूत गोस्वामी ने कहा : हे भृगुपुत्र, महर्षि मैत्रेय मुनि विदुर से इस तरह सुनकर अत्यधिक प्रोत्साहित हुए। हर वस्तु उनके हृदय में थी, अतः वे प्रश्नों का एक एक करके उत्तर देने लगे।

तात्पर्य : *सूत उवाच* (सूत गोस्वामी ने कहा) वाक्यांश यह सूचित करता प्रतीत होता है मानो महाराज परीक्षित तथा शुकदेव गोस्वामी के बीच चल रही वार्ता में भंग हुआ हो। जब शुकदेव गोस्वामी महाराज परीक्षित से बोल रहे थे तो सूत गोस्वामी तमाम दर्शकों में से एक थे। किन्तु सूत गोस्वामी नैमिषारण्य के मुनियों से बातें कर रहे थे जिनमें शुकदेव गोस्वामी के वंशज शौनक मुख्य थे। पर इससे विवेचनगत कथाओं में विशेष अन्तर नहीं आता।

मैत्रेय उवाच
विरिञ्चोऽपि तथा चक्रे दिव्यं वर्षशतं तपः ।
आत्मन्यात्मानमावेश्य यथाह भगवानजः ॥ ४॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—महर्षि मैत्रेय ने कहा; विरिञ्चः—ब्रह्मा ने; अपि—भी; तथा—उस तरह से; चक्रे—सम्पन्न किया; दिव्यम्—स्वर्गिक; वर्ष-शतम्—एक सौ वर्ष; तपः—तपस्या; आत्मनि—भगवान् की; आत्मानम्—अपने आप; आवेश्य—संलग्न रह कर; यथा आह—जैसा कहा गया था; भगवान्—भगवान्; अजः—अजन्मा।

परम विद्वान मैत्रेय मुनि ने कहा : हे विदुर, इस तरह भगवान् द्वारा दी गई सलाह के अनुसार ब्रह्मा ने एक सौ दिव्य वर्षों तक अपने को तपस्या में संलग्न रखा और अपने को भगवान् की भक्ति में लगाये रखा।

तात्पर्य : ब्रह्मा ने भगवान् नारायण के हेतु अपने आपको संलग्न रखा, इसका यह अर्थ है कि उन्होंने भगवान् की सेवा में अपने को लगाए रखा। यही वह सर्वोच्च तपस्या है, जो कितने ही वर्षों तक की जा सकती है। ऐसी सेवा से कोई कभी निवृत्त नहीं होता, क्योंकि यह शाश्वत तथा सदैव उत्साहवर्धक होती है।

तद्विलोक्याब्जसम्भूतो वायुना यदधिष्ठितः ।
पद्मम्भश्च तत्कालकृतवीर्येण कम्पितम् ॥ ५॥

शब्दार्थ

तत् विलोक्य—उसके भीतर देखकर; अब्ज-सम्भूतः—कमल से उत्पन्न; वायुना—वायु द्वारा; यत्—जो; अधिष्ठितः—जिस पर यह स्थित था; पद्मम्—कमल; अम्भः—जल; च—भी; तत्-काल-कृत—जो नित्य काल द्वारा प्रभावित था; वीर्येण—अपनी निहित शक्ति से; कम्पितम्—काँपता।

तत्पश्चात् ब्रह्मा ने देखा कि वह कमल जिस पर वे स्थित थे तथा वह जल जिसमें कमल उगा था प्रबल प्रचण्ड वायु के कारण काँप रहे हैं।

तात्पर्य : भौतिक जगत मोहमय कहलाता है, क्योंकि यह भगवान् की दिव्य सेवा की विस्मृति का स्थान है। इस तरह इस भौतिक जगत में भगवद्भक्ति में संलग्न व्यक्ति कभी-कभी विषम परिस्थितियों से अत्यधिक विचलित हो सकता है। माया शक्ति तथा भक्त—इन दो पक्षों के बीच युद्ध की घोषणा हुई रहती है और कभी कभी दुर्बल भक्त-पक्ष सबल मायाशक्ति के प्रतिघात की चपेंट में आ जाता है। किन्तु भगवान् की अहैतुकी कृपावश ब्रह्माजी अत्यन्त प्रबल थे और मायाशक्ति उन्हें अपना शिकार नहीं बना सकी यद्यपि यह उनकी चिन्ता का कारण तब बनी जब यह उनके पद को लड़खड़ाने में समर्थ हुई।

तपसा ह्येधमानेन विद्यया चात्मसंस्थया ।
विवृद्धविज्ञानबलो न्यपाद्वायुं सहाम्भसा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तपसा—तपस्या से; हि—निश्चय ही; एधमानेन—बढ़ते हुए; विद्यया—दिव्य ज्ञान द्वारा; च—भी; आत्म—आत्मा; संस्थया—आत्मस्थ; विवृद्ध—परिपक्व; विज्ञान—व्यावहारिक ज्ञान; बलः—शक्ति; न्यपात्—पी लिया; वायुम्—वायु को; सह अम्भसा—जल के सहित।

दीर्घकालीन तपस्या तथा आत्म-साक्षात्कार के दिव्य ज्ञान ने ब्रह्मा को व्यावहारिक ज्ञान में परिपक्व बना दिया था, अतः उन्होंने वायु को पूर्णतः जल के साथ पी लिया।

तात्पर्य : अस्तित्व के लिए ब्रह्माजी का संघर्ष उस निरन्तर युद्ध का निजी उदाहरण प्रस्तुत करता है, जो इस भौतिक जगत में जीवों तथा मोहिनी शक्ति माया में चलता रहता है। ब्रह्मा से लेकर आज तक सारे जीव भौतिक प्रकृति की सेनाओं से संघर्ष करते रहे हैं। विज्ञान तथा दिव्य अनुभूति में प्रगत ज्ञान के कारण मनुष्य उस भौतिक शक्ति पर नियंत्रण पाने का प्रयास कर सकता है, जो हमारे प्रयासों के विरुद्ध कार्यशील रहती है और आधुनिक युग में तो प्रगत भौतिक वैज्ञानिक ज्ञान तथा तपस्या ने भौतिक शक्तियों को नियंत्रित करने में अद्भुत भूमिका निभाई है। किन्तु भौतिक शक्ति पर ऐसा नियंत्रण तभी सफल हो सकता है जब मनुष्य भगवान् के शरणागत हो और दिव्य प्रेमाभक्ति के भाव से उनके आदेश का पालन करे।

तद्विलोक्य वियद्व्यापि पुष्करं यदधिष्ठितम् ।
अनेन लोकान्प्राग्लीनान्कल्पितास्मीत्यचिन्तयत् ॥ ७॥

शब्दार्थ

तत् विलोक्य—उसे देखकर; वियत्-व्यापि—अतीव विस्तृत; पुष्करम्—कमल; यत्—जो; अधिष्ठितम्—स्थित था; अनेन—इससे; लोकान्—सारे लोक; प्राक्-लीनान्—पहले प्रलय में मग्न; कल्पिता अस्मि—मैं सृजन करूँगा; इति—इस प्रकार; अचिन्तयत्—उसने सोचा।

तत्पश्चात् उन्होंने देखा कि वह कमल, जिस पर वे आसीन थे, ब्रह्माण्ड भर में फैला हुआ है और उन्होंने विचार किया कि उन समस्त लोकों को किस तरह उत्पन्न किया जाय जो इसके पूर्व उसी कमल में लीन थे।

तात्पर्य : ब्रह्माण्ड के सारे लोकों के बीज उसी कमल में गर्भस्थ थे जिस पर ब्रह्मा आसीन थे। भगवान् ने पहले से सारे लोकों को उत्पन्न कर रखा था और सारे जीव भी ब्रह्मा में जन्म ले चुके थे। भौतिक जगत तथा सारे जीव पहले से ही बीजाणु रूप में भगवान् द्वारा उत्पन्न किये जा चुके थे और ब्रह्मा को इन्हीं बीजों को ब्रह्माण्ड भर में बिखेरना था। इसलिए असली सृष्टि *सर्ग* कहलाती है और बाद में ब्रह्मा द्वारा जो सृष्टि की गई वह *विसर्ग* कहलाती है।

पद्मकोशं तदाविश्य भगवत्कर्मचोदितः ।
एकं व्यभाङ्क्षीदुरुधा त्रिधा भाव्यं द्विसप्तधा ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

पद्म-कोशम्—कमल-चक्र में; तदा—तब; आविश्य—प्रवेश करके; भगवत्—भगवान् द्वारा; कर्म—कार्यकलाप में; चोदितः—प्रोत्साहित किया गया; एकम्—एक; व्यभाङ्क्षीत्—विभाजित कर दिया; उरुधा—महान् खण्ड; त्रिधा—तीन विभाग; भाव्यम्—आगे सृजन करने में समर्थ; द्वि-सप्तधा—चौदह विभाग।

इस तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा में लगे ब्रह्माजी कमल के कोश में प्रविष्ट हुए और चूँकि वह सारे ब्रह्माण्ड में फैला हुआ था, अतः उन्होंने इसे ब्रह्माण्ड के तीन विभागों में और उसके बाद चौदह विभागों में बाँट दिया।

एतावाञ्जीवलोकस्य संस्थाभेदः समाहृतः ।
धर्मस्य ह्यनिमित्तस्य विपाकः परमेष्ठ्यसौ ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

एतावान्—यहाँ तक; जीव-लोकस्य—जीवों द्वारा निवसित लोकों के; संस्था-भेदः—निवास स्थान की विभिन्न स्थितियाँ; समाहृतः—पूरी तरह सम्पन्न; धर्मस्य—धर्म का; हि—निश्चय ही; अनिमित्तस्य—अहैतुकता का; विपाकः—परिपक्व अवस्था; परमेष्ठी—ब्रह्माण्ड में सर्वोच्च व्यक्ति; असौ—उस।.

परिपक्व दिव्य ज्ञान में भगवान् की अहैतुकी भक्ति के कारण ब्रह्माजी ब्रह्माण्ड में सर्वोच्च पुरुष हैं। इसीलिए उन्होंने विभिन्न प्रकार के जीवों के निवास स्थान के लिए चौदह लोकों का सृजन किया।

तात्पर्य : पमरेश्वर जीवों के समस्त गुणों के आगार हैं। भौतिक जगत में बद्धजीव उन गुणों के अंशमात्र की झलक देते हैं, इसीलिए कभी कभी वे *प्रतिबिम्ब* कहलाते हैं। इन *प्रतिबिम्ब* जीवों ने परमेश्वर के भिन्नांशों के रूप में उनके आदि गुणों के विभिन्न अनुपातों को ही उत्तराधिकार में ग्रहण किया है और इन गुणों को ग्रहण करने के अनुसार ही वे विभिन्न जीवयोनियों के रूप में प्रकट होते हैं और ब्रह्मा की योजना के अनुसार विभिन्न लोकों में स्थान पाते हैं। ब्रह्माजी तीनों जगतों—पाताललोक अर्थात् अधोलोक, भूर्लोक अर्थात् मध्यलोक तथा स्वर्गलोक अर्थात् उच्चतर लोक—के स्रष्टा हैं। इनसे भी उच्चतर लोक यथा महर्लोक, तपोलोक, सत्यलोक तथा ब्रह्मलोक प्रलयजल में विलीन नहीं होते। इसका कारण उन लोकों के निवासियों द्वारा की जाने वाली भगवान् की अहैतुकी भक्ति-मय सेवा है और इन निवासियों का अस्तित्व *द्विपरार्ध* काल के अन्त तक बना रहता है जब वे भौतिक जगत में जन्म-मृत्यु की शृंखला से सामान्य रूप से मुक्त कर दिये जाते हैं।

विदुर उवाच
यथात्थ बहुरूपस्य हरेरद्भुतकर्मणः ।
कालाख्यं लक्षणं ब्रह्मन्यथा वर्णय नः प्रभो ॥ १० ॥

शब्दार्थ

विदुरः उवाच—विदुर ने कहा; यथा—जिस तरह; आत्थ—आपने कहा है; बहु-रूपस्य—विभिन्न रूपों वाले; हरेः—भगवान् के; अद्भुत—विचित्र; कर्मणः—अभिनेता का; काल—समय; आख्यम्—नामक; लक्षणम्—लक्षण; ब्रह्मन्—हे विद्वान ब्राह्मण; यथा—यह जैसा है; वर्णय—कृपया वर्णन करें; नः—हमसे; प्रभो—हे प्रभु।.

विदुर ने मैत्रेय से पूछा : हे प्रभु, हे परम विद्वान ऋषि, कृपा करके नित्यकाल का वर्णन करें जो अद्भुत अभिनेता परमेश्वर का दूसरा रूप है। नित्य काल के क्या लक्षण हैं? कृपा करके हमसे विस्तार से कहें।

तात्पर्य : यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अणुओं से लेकर विराट ब्रह्माण्ड तक के चित्र-विचित्र जीवों का

प्राकट्य है और यह सब परमेश्वर के *काल* रूप के नियंत्रण में हैं। नियंत्रक काल विशिष्ट जीवधारियों के अनुसार विभिन्न विस्तारों वाला है। परमाणु-लय के लिए एक काल है और विश्व-लय के लिए भी एक अलग काल है। मनुष्य के शरीर के लय का एक काल है और विश्व शरीर के लय का भी एक काल है। वृद्धि, विकास तथा परिणामी कर्म—ये सभी काल पर आश्रित हैं। विदुर विभिन्न भौतिक प्राकट्यों तथा उनके विलीन होने के कालों के विषय में विस्तार से जानना चाह रहे थे।

मैत्रेय उवाच
गुणव्यतिकराकारो निर्विशेषोऽप्रतिष्ठितः ।
पुरुषस्तदुपादानमात्मानं लीलयासृजत् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; गुण-व्यतिकर—प्रकृति के गुणों की अन्योन्य क्रियाओं का; आकारः—स्रोत; निर्विशेषः—विविधता रहित; अप्रतिष्ठितः—असीम; पुरुषः—परम पुरुष का; तत्—वह; उपादानम्—निमित्त; आत्मानम्—भौतिक सृष्टि; लीलया—लीलाओं द्वारा; असृजत्—उत्पन्न किया।

मैत्रेय ने कहा : नित्यकाल ही प्रकृति के तीनों गुणों की अन्योन्य क्रियाओं का आदि स्रोत है। यह अपरिवर्तनशील तथा सीमारहित है और भौतिक सृजन की लीलाओं में यह भगवान् के निमित्त रूप में कार्य करता है।

तात्पर्य : निर्विशेष काल तत्त्व भगवान् के उपादान (निमित्त) के रूप में भौतिक जगत की पृष्ठभूमि है। यह भौतिक प्रकृति को प्रदत्त की गई सहायता का घटक है। कोई भी नहीं जानता कि काल कब प्रारम्भ हुआ और इसका कब अन्त होता है। काल तत्त्व ही भौतिक जगत के सृजन, पालन तथा संहार का लेखा-जोखा रख सकता है। यह काल तत्त्व सृष्टि का भौतिक कारण है, अतएव भगवान् का स्वांश है। काल भगवान् का निर्विशेष रूप माना जाता है।

आधुनिक लोगों ने भी अनेक प्रकारों से काल तत्त्व की व्याख्या की है। कुछ लोग इसे लगभग उसी रूप में स्वीकार करते हैं जैसाकि *श्रीमद्भागवत* में बतलाया गया है। उदाहरणार्थ, हिब्रू साहित्य में काल को ईश्वर के स्वरूप में स्वीकार किया गया है। उसमें कहा गया है ''ईश्वर ने भूतकाल में पैगम्बरों के द्वारा पिताओं से कभी कभी और अनेक प्रकार से बातें कीं।'' तत्त्वमीमांसा की दृष्टि से काल को परम पूर्ण तथा वास्तविक के रूप में विभेदित किया जाता है। परम पूर्ण काल तो सतत है और भौतिक वस्तुओं की गति या मन्दता से अप्रभावित रहता है। काल की गणना ज्योतिर्विज्ञान तथा गणित के

अनुसार गति, परिवर्तन तथा किसी वस्तु विशेष के जीवन के परिपेक्ष्य में की जाती है। किन्तु वस्ततु: काल का वस्तुओं की सापेक्षताओं से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता; प्रत्युत हर वस्तु काल द्वारा प्रदत्त सुविधा के रूप में बनती तथा परिगणित होती है। काल हमारी इन्द्रियों की क्रियाशीलता की मूलभूत माप है, जिसके द्वारा हम भूत, वर्तमान तथा भविष्य की गणना करते हैं। किन्तु वास्तविक गणना में काल का कोई आदि तथा अन्त नहीं होता। पण्डित चाणक्य का कथन है कि काल के अल्पांश को भी करोड़ों डालर मूल्य देकर खरीदा नहीं जा सकता। अतएव बिना लाभ के खोए हुए काल का एक क्षण भी जीवन की सबसे बड़ी हानि है। काल न तो किसी प्रकार के मनोविज्ञान के अधीन है न ही काल के क्षण अपने में वस्तुगत वास्तविकताएँ हैं, किन्तु वे विशेष अनुभवों पर आश्रित हैं।

इसीलिए श्रील जीव गोस्वामी इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि काल तत्त्व भगवान् की बहिरंगा शक्ति के कार्य-कारणों से मिलाजुला हुआ है। बहिरंगा शक्ति या भौतिक प्रकृति स्वयम् भगवान् के रूप में काल की अधीक्षता में कार्य करती है, इसीलिए ऐसा लगता है कि भौतिक प्रकृति ने विराट जगत में अनेक आश्चर्यजनक वस्तुएँ उत्पन्न की हैं। *भगवद्गीता* (९.१०) में इस निष्कर्ष की पुष्टि इस प्रकार हुई है—

मयाध्यक्षेण प्रकृति: सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥

विश्वं वै ब्रह्मतन्मात्रं संस्थितं विष्णुमायया ।
ईश्वरेण परिच्छिन्नं कालेनाव्यक्तमूर्तिना ॥ १२॥

शब्दार्थ

विश्वम्—भौतिक चक्र; वै—निश्चय ही; ब्रह्म—ब्रह्म; तत्-मात्रम्—उसी तरह का; संस्थितम्—स्थित; विष्णु-माययया—विष्णु की शक्ति से; ईश्वरेण—भगवान् द्वारा; परिच्छिन्नम्—पृथक् की गई; कालेन—नित्य काल द्वारा; अव्यक्त—अप्रकट; मूर्तिना—ऐसे स्वरूप द्वारा।

यह विराट जगत भौतिक शक्ति के रूप में अप्रकट तथा भगवान् के निर्विशेष स्वरूप काल द्वारा भगवान् से विलग किया हुआ है। यह विष्णु की उसी भौतिक शक्ति के प्रभाव के अधीन भगवान् की वस्तुगत अभिव्यक्ति के रूप में स्थित है।

तात्पर्य : जैसाकि व्यासदेव के समक्ष नारद पहले कह चुके हैं (*भागवत* १.५.२०) *इदं हि विश्वं*

भगवान् इवेतरः—यह अव्यक्त जगत साक्षात् भगवान् है, किन्तु यह भगवान् से परे या भिन्न कुछ और ही प्रतीत होता है। यह इसलिए ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि *काल* द्वारा यह भगवान् से पृथक् किया गया है। यह टेप रिकार्ड द्वारा अंकित उस मनुष्य की वाणी जैसा है, जो सम्प्रति अपनी वाणी से विलग किया हुआ है। जिस तरह टेप-अंकन टेप पर स्थित है, उसी तरह सारा भौतिक जगत भौतिक शक्ति पर स्थित है और *काल* के द्वारा पृथक् प्रतीत होता है। इसलिए भौतिक अभिव्यक्ति परमेश्वर की वस्तुगत अभिव्यक्ति है और उनके निर्विशेष रूप को प्रदर्शित करती है, जो निर्विशेष दार्शनिकों द्वारा इतनी अधिक पूजित है।

यथेदानीं तथाग्रे च पश्चादप्येतदीदृशम् ॥ १३॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह है; इदानीम्—इस समय; तथा—उसी तरह; अग्रे—प्रारम्भ में; च—तथा; पश्चात्—अन्त में; अपि—भी; एतत् ईदृशम्—वैसा ही रहता है।

यह विराट जगत जैसा अब है वैसा ही रहता है। यह भूतकाल में भी ऐसा ही था और भविष्य में इसी तरह रहेगा।

तात्पर्य : जैसाकि *भगवद्गीता* (९.८) में कहा गया है— *भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्*— भौतिक जगत के शाश्वत प्राकट्य, पालन तथा संहार के लिए क्रमबद्ध व्यवस्थित कार्यक्रम हैं। जिस तरह यह अभी उत्पन्न किया गया है और बाद में नष्ट कर दिया जायेगा उसी तरह यह भूतकाल में था और कालक्रम में पुनः सृजित, पालित और विनष्ट होगा। अतः काल के क्रमबद्ध कार्यकलाप स्थायी और शाश्वत हैं और इन्हें मिथ्या नहीं कहा जा सकता। अभिव्यक्ति अस्थायी तथा आकस्मिक है, किन्तु मिथ्या नहीं है जैसाकि मायावादी दार्शनिक दावा करते हैं।

सर्गो नवविधस्तस्य प्राकृतो वैकृतस्तु यः ।
कालद्रव्यगुणैरस्य त्रिविधः प्रतिसङ्क्रमः ॥ १४॥

शब्दार्थ

सर्गः—सृष्टि; नव-विधः—नौ भिन्न-भिन्न प्रकार की; तस्य—इसका; प्राकृतः—भौतिक; वैकृतः—प्रकृति के गुणों द्वारा; तु—लेकिन; यः—जो; काल—नित्यकाल; द्रव्य—पदार्थ; गुणैः—गुणों के द्वारा; अस्य—इसके; त्रि-विधः—तीन प्रकार; प्रतिसङ्क्रमः—संहार।

उस एक सृष्टि के अतिरिक्त जो गुणों की अन्योन्य क्रियाओं के फलस्वरूप स्वाभाविक रूप

से घटित होती है नौ प्रकार की अन्य सृष्टियाँ भी हैं। नित्य काल, भौतिक तत्त्वों तथा मनुष्य के कार्य के गुण के कारण प्रलय तीन प्रकार का है।

तात्पर्य : नियमबद्ध सृजन तथा संहार परमेच्छा के रूप में होते हैं। भौतिक तत्त्वों की अन्योन्य क्रियाओं से अन्य सृष्टियाँ भी होती हैं, जो ब्रह्मा की बुद्धि के द्वारा घटित होती हैं। बाद में इनकी विशद व्याख्या की जायेगी। सम्प्रति, केवल प्रारम्भिक जानकारी दी गई है। तीन प्रकार के प्रलय के कारण हैं (१) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्रलय के निर्धारित काल के कारण (२) अनन्त के मुख से निकलने वाली अग्नि के कारण तथा (३) मनुष्य के गुणात्मक कार्य-कारणों के फलस्वरूप।

आद्यस्तु महतः सर्गो गुणवैषम्यमात्मनः ।
द्वितीयस्त्वहमो यत्र द्रव्यज्ञानक्रियोदयः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

आद्यः—प्रथम; तु—लेकिन; महतः—भगवान् से पूर्ण उद्भास की; सर्गः—सृष्टि; गुण-वैषम्यम्—भौतिक गुणों की अन्योन्य क्रिया; आत्मनः—ब्रह्म का; द्वितीयः—दूसरी; तु—लेकिन; अहमः—मिथ्या अहंकार; यत्र—जिसमें; द्रव्य—भौतिक घटक; ज्ञान—भौतिक ज्ञान; क्रिया-उदयः—कार्य की जागृति।

नौ सृष्टियों में से पहली सृष्टि महत् तत्त्वसृष्टि अर्थात् भौतिक घटकों की समग्रता है, जिसमें परमेश्वर की उपस्थिति के कारण गुणों में परस्पर क्रिया होती है। द्वितीय सृष्टि में मिथ्या अहंकार उत्पन्न होता है, जिसमें से भौतिक घटक, भौतिक ज्ञान तथा भौतिक कार्यकलाप प्रकट होते हैं।

तात्पर्य : भौतिक सृष्टि के लिए परमेश्वर से जो पहला उद्भास होता है, वह *महत्-तत्त्व* कहलाता है। भौतिक गुणों की अन्योन्य क्रिया मिथ्या स्वरूप का कारण है या कि इस भाव का कि जीव भौतिक तत्त्वों से बना है। यह मिथ्या अहंकार आत्मा के साथ शरीर तथा मन की पहचान करने का कारण है। भौतिक संसाधन तथा कार्य करने की क्षमता एवं ज्ञान की उत्पत्ति सृष्टि के दूसरे चरण में होती है, अर्थात् *महत्तत्त्व* के बाद। ज्ञान सूचक है इन्द्रियों का, जो ज्ञान एवं इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवों की साधन हैं। कर्म के अन्तर्गत कर्मेन्द्रियाँ तथा उनके अधिष्ठाता देव आते हैं। ये सब द्वितीय सृष्टि में उत्पन्न होते हैं।

भूतसर्गस्तृतीयस्तु तन्मात्रो द्रव्यशक्तिमान् ।
चतुर्थ ऐन्द्रियः सर्गो यस्तु ज्ञानक्रियात्मकः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

भूत-सर्ग:—पदार्थ की उत्पत्ति; तृतीय:—तीसरी; तु—लेकिन; तत्-मात्र:—इन्द्रियविषय; द्रव्य—तत्वों के; शक्तिमान्—स्रष्टा; चतुर्थ:—चौथा; ऐन्द्रिय:—इन्द्रियों के विषय में; सर्ग:—सृष्टि; य:—जो; तु—लेकिन; ज्ञान—ज्ञान-अर्जन; क्रिया—कार्य करने की; आत्मक:—मूलत: ।

इन्द्रिय विषयों का सृजन तृतीय सृष्टि में होता है और इनसे तत्त्व उत्पन्न होते हैं। चौथी सृष्टि है ज्ञान तथा कार्य-क्षमता (क्रियाशक्ति) का सृजन।

वैकारिको देवसर्ग: पञ्चमो यन्मयं मन: ।
षष्ठस्तु तमस: सर्गो यस्त्वबुद्धिकृत: प्रभो: ॥ १७॥

शब्दार्थ

वैकारिक:—सतोगुण की अन्योन्य क्रिया; देव—देवता या अधिष्ठाता देव; सर्ग:—सृष्टि; पञ्चम:—पाँचवीं; यत्—जो; मयम्—सम्पूर्णता; मन:—मन; षष्ठ:—छठी; तु—लेकिन; तमस:—तमोगुण की; सर्ग:—सृष्टि; य:—जो; तु—अनुपूरक; अबुद्धि-कृत:—मूर्ख बनाई गई; प्रभो:—स्वामी की ।

पाँचवीं सृष्टि सतोगुण की अन्योन्य क्रिया द्वारा बने अधिष्ठाता देवों की है, जिसका सार समाहार मन है। छठी सृष्टि जीव के अज्ञानतापूर्ण अंधकार की है, जिससे स्वामी मूर्ख की तरह कार्य करता है।

तात्पर्य : उच्चलोकों के देवता *देव* कहलाते हैं, क्योंकि वे सब भगवान् विष्णु के भक्त हैं। *विष्णु भक्त: स्मृतो दैव आसुरस्तद्विपर्यय:*—विष्णु के सारे भक्त *देव* हैं, जबकि अन्य सारे *असुर* हैं। यह *देवों* तथा *असुरों* का विभाजन है। *देव* भौतिक प्रकृति में सतोगुणी होते हैं जबकि *असुर* रजो या तमोगुणी होते हैं। देवताओं या अधिष्ठाता देवों को भौतिक जगत के विभिन्न कार्यों की विभागीय व्यवस्था सौंपी हुई है। उदाहरणार्थ, हमारी इन्द्रियों में से एक इन्द्रिय आँख प्रकाश द्वारा नियंत्रित है, यह प्रकाश सूर्य की किरणों द्वारा वितरित होता है और उनका अधिष्ठाता देव सूर्य है। इसी तरह मन चन्द्रमा द्वारा नियंत्रित होता है। अन्य सारी इन्द्रियाँ—कर्मेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियाँ—विभिन्न देवताओं द्वारा नियंत्रित की जाती हैं। देवतागण भौतिक मामलों की व्यवस्था में भगवान् के सहायक हैं।

देवताओं की सृष्टि के बाद सारे जीव अज्ञान के अंधकार से प्रच्छन्न रहते हैं। भौतिक जगत का प्रत्येक जीव भौतिक प्रकृति के संसाधनों पर प्रभुत्व जताने की अपनी प्रवृत्ति से बद्ध है। यद्यपि जीव भौतिक जगत का स्वामी नहीं है, किन्तु वह अज्ञान से, भौतिक वस्तुओं के स्वामी होने की मिथ्या भावना से बद्ध है।

भगवान् की *अविद्या* नामक शक्ति बद्धजीवों को मोहग्रस्त बनाने वाली है। भौतिक प्रकृति *अविद्या* कहलाती है, किन्तु भगवद्भक्ति में लगे हुए भक्तों के लिए यह शक्ति *विद्या* अर्थात् शुद्ध ज्ञान बन जाती है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में हुई है। भगवान् की शक्ति *महामाया* से *योगमाया* में रूपान्तरित हो जाती है और भक्त के समक्ष अपने असली रूप में प्रकट होती है। अतएव भौतिक प्रकृति तीन चरणों में कार्य करती प्रतीत होती है—भौतिक जगत के सृजन सिद्धान्त के रूप में, अज्ञान के रूप में तथा ज्ञान के रूप में। जैसाकि पिछले श्लोक में उद्घाटित हुआ है चौथी सृष्टि में ज्ञान शक्ति भी उत्पन्न होती है। बद्धजीव मूलत: मूर्ख नहीं होते, किन्तु प्रकृति के *अविद्या* कार्य के प्रभाव से वे मूर्ख बना दिये जाते हैं जिससे वे सही दिशा में ज्ञान का उपयोग नहीं कर पाते।

अंधकार के प्रभाव से बद्धजीव परमेश्वर के साथ अपने सम्बन्ध को भूल जाता है और वह राग, घृणा, गर्व, अज्ञान तथा झूठी पहचान से अभिभूत हो जाता है, जो कि भौतिक बन्धन उत्पन्न करने वाले पाँच प्रकार के मोह हैं।

षडिमे प्राकृता: सर्गा वैकृतानपि मे शृणु ।
रजोभाजो भगवतो लीलेयं हरिमेधस: ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

षट्—छठी; इमे—ये सब; प्राकृता:—भौतिक शक्ति की; सर्गा:—सृष्टियाँ; वैकृतान्—ब्रह्मा द्वारा गौण सृष्टियाँ; अपि—भी; मे—मुझसे; शृणु—सुनो; रज:-भाज:—रजोगुण के अवतार (ब्रह्मा) का; भगवत:—अत्यन्त शक्तिशाली की; लीला—लीला; इयम्—यह; हरि—भगवान्; मेधस:—ऐसे मस्तिष्क वाले का।

उपर्युक्त समस्त सृष्टियाँ भगवान् की बहिरंगा शक्ति की प्राकृतिक सृष्टियाँ हैं। अब मुझसे उन ब्रह्माजी द्वारा की गई सृष्टियों के विषय में सुनो जो रजोगुण के अवतार हैं और सृष्टि के मामले में जिनका मस्तिष्क भगवान् जैसा ही है।

सप्तमो मुख्यसर्गस्तु षड्विधस्तस्थुषां च य: ।
वनस्पत्योषधिलतात्वक्सारा वीरुधो द्रुमा: ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

सप्तम:—सातवीं; मुख्य—प्रधान; सर्ग:—सृष्टि; तु—निस्सन्देह; षट्-विध:—छ: प्रकार की; तस्थुषाम्—न चलने वालों की; च—भी; य:—वे; वनस्पति—बिना फूल वाले फल वृक्ष; ओषधि—पेड़-पौधे जो फल के पकने तक जीवित रहते हैं; लता—लताएँ; त्वक्सारा:—नलीदार पौधे; वीरुध:—बिना आधार वाली लताएँ; द्रुमा:—फलफूल वाले वृक्ष।

सातवीं सृष्टि अचर प्राणियों की है, जो छ: प्रकार के हैं: फूलरहित फलवाले वृक्ष, फल

पकने तक जीवित रहने वाले पेड़-पौधे, लताएं, नलीदार पौधे; बिना आधार वाली लताएँ तथा फलफूल वाले वृक्ष।

उत्स्रोतसस्तम:प्राया अन्त:स्पर्शा विशेषिण: ॥ २० ॥

शब्दार्थ

उत्स्रोतस:—ऊर्ध्वगामी, नीचे से ऊपर की ओर; तम:-प्राया:—प्राय: अचेत; अन्त:-स्पर्शा:—भीतर कुछ कुछ अनुभव करते हुए; विशेषिण:—नाना प्रकार के स्वरूपों से युक्त।.

सारे अचर पेड़-पौधे ऊपर की ओर बढ़ते हैं। वे अचेतप्राय होते हैं, किन्तु भीतर ही भीतर उनमें पीड़ा की अनुभूति होती है। वे नाना प्रकारों में प्रकट होते हैं।

तिरश्चामष्टम: सर्ग: सोऽष्टाविंशद्विधो मत: ।
अविदो भूरितमसो घ्राणज्ञा हृद्यवेदिन: ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तिरश्चाम्—निम्न पशुओं की जातियाँ; अष्टम:—आठवीं; सर्ग:—सृष्टि; स:—वे हैं; अष्टाविंशत्—अट्ठाईस; विध:—प्रकार; मत:—माने हुए; अविद:—कल के ज्ञान से रहित; भूरि—अत्यधिक; तमस:—अज्ञानी; घ्राण-ज्ञा:—गन्ध से इच्छित वस्तुओं को जानने वाले; हृदि अवेदिन:—हृदय में बहुत कम स्मरण रखने वाले।.

आठवीं सृष्टि निम्नतर जीवयोनियों की है और उनकी अट्ठाईस विभिन्न जातियाँ हैं। वे सभी अत्यधिक मूर्ख तथा अज्ञानी होती हैं। वे गन्ध से अपनी इच्छित वस्तुएँ जान पाती हैं, किन्तु हृदय में कुछ भी स्मरण रखने में अशक्य होती हैं।

तात्पर्य : वेदों में निम्नतर पशुओं के लक्षणों का वर्णन इस प्रकार हुआ है: *अथेतरेषां पशूना: अशनापिपासे एवाभिविज्ञानं न विज्ञातं वदन्ति न विज्ञातं पश्यन्ति न विदु: स्वस्तनं न लोकालोकाविति; यद्वा भूरि-तमसो बहुरुष: घ्राणेनैव जानन्ति हृदयं प्रति स्वप्रियं वस्त्वेव विन्दन्ति भोजनशयनाद्यर्थं गृहणन्ति।* ''निम्नतर पशुओं को केवल अपनी भूख तथा प्यास का ज्ञान होता है। उन्होंने न तो कोई ज्ञान अर्जित किया होता है, न दृष्टि। उनके व्यवहार में औपचारिकता पर निर्भरता प्रदर्शित नहीं होती। वे अत्यधिक अज्ञानी हैं, वे अपनी इच्छित वस्तुओं को केवल गन्ध से ही जान सकते हैं और ऐसी बुद्धि से इतना ही समझ सकते हैं कि क्या उपयुक्त है और क्या अनुपयुक्त। उनका ज्ञान एकमात्र भोजन करने तथा सोने तक सीमित है।'' इसीलिए सर्वाधिक खूँखार निम्नतर पशु, यथा बाघ तक को नियमित रूप

से भोजन तथा सोने के लिए आवास का स्थान देकर पाला जा सकता है। एकमात्र सर्प ऐसे हैं, जिन्हें इस तरह से नहीं पाला जा सकता।

गौरजो महिषः कृष्णः सूकरो गवयो रुरुः ।
द्विशफाः पशवश्चेमे अविरुष्ट्रश्च सत्तम ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

गौः—गाय; अजः—बकरी; महिषः—भैंस; कृष्णः—एक प्रकार का बारहसिंगा; सूकरः—सुअर; गवयः—पशु की एक जाति (नीलगाय); रुरुः—हिरन; द्वि-शफाः—दो खुरों वाले; पशवः—पशु; च—भी; इमे—ये सभी; अविः—मेंढा; उष्ट्रः—ऊँट; च—तथा; सत्तम—हे शुद्धतम।

हे शुद्धतम विदुर, निम्नतर पशुओं में गाय, बकरी, भैंस, काला बारहसिंगा, सूकर, नीलगाय, हिरन, मेंढा तथा ऊँट ये सब दो खुरों वाले हैं।

खरोऽश्वोऽश्वतरो गौरः शरभश्चमरी तथा ।
एते चैकशफाः क्षत्तः शृणु पञ्चनखान्पशून् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

खरः—गधा; अश्वः—घोड़ा; अश्वतरः—खच्चर; गौरः—सफेद हिरन; शरभः—भैंसा; चमरी—चँवरी गाय; तथा—इस प्रकार; एते—ये सभी; च—तथा; एक—केवल एक; शफाः—खुर; क्षत्तः—हे विदुर; शृणु—सुनो; पञ्च—पाँच; नखान्—नाखून वाले; पशून्—पशुओं के बारे में।

घोड़ा, खच्चर, गधा, गौर, शरभ-भैंसा तथा चँवरी गाय इन सबों में केवल एक खुर होता है। अब मुझसे उन पशुओं के बारे में सुनो जिनके पाँच नाखून होते हैं।

श्वा सृगालो वृको व्याघ्रो मार्जारः शशशल्लकौ ।
सिंहः कपिर्गजः कूर्मो गोधा च मकरादयः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

श्वा—कुत्ता; सृगालः—सियार; वृकः—लोमड़ी; व्याघ्रः—बाघ; मार्जारः—बिल्ली; शश—खरगोश; शल्लकौ—सजारु (स्याही, जिसके शरीर पर काँटे होते हैं); सिंहः—शेर; कपिः—बन्दर; गजः—हाथी; कूर्मः—कछुआ; गोधा—गोसाप (गोह); च—भी; मकर-आदयः—मगर इत्यादि।

कुत्ता, सियार, बाघ, लोमड़ी, बिल्ली, खरगोश, सजारु (स्याही), सिंह, बन्दर, हाथी, कछुवा, मगर, गोसाप (गोह) इत्यादि के पंजों में पाँच नाखून होते हैं। वे पञ्चनख अर्थात् पाँच नाखूनों वाले पशु कहलाते हैं।

कङ्कगृध्रबकश्येनभासभल्लूकबर्हिणः ।
हंससारसचक्राह्वकाकोलूकादयः खगाः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

कङ्क—बगुला; गृध्र—गीध; बक—बगुला; श्येन—बाज; भास—भास; भल्लूक—भल्लूक (भालू); बर्हिणः—मोर; हंस—हंस; सारस—सारस; चक्राह्व—चक्रवाक, (चकई चकवा); काक—कौवा; उलूक—उल्लू; आदयः—इत्यादि; खगाः—पक्षी।

कंक, गीध, बगुला, बाज, भास, भल्लूक, मोर, हंस, सारस, चक्रवाक, कौवा, उल्लू इत्यादि पक्षी कहलाते हैं।

अर्वाक्स्रोतस्तु नवमः क्षत्तरेकविधो नृणाम् ।
रजोऽधिकाः कर्मपरा दुःखे च सुखमानिनः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

अर्वाक्—नीचे की ओर; स्रोतः—भोजन की नली; तु—लेकिन; नवमः—नौवीं; क्षत्तः—हे विदुर; एक-विधः—एक जाति; नृणाम्—मनुष्यों की; रजः—रजोगुण; अधिकाः—अत्यन्त प्रधान; कर्म-पराः—कर्म में रुचि रखने वाले; दुःखे—दुख में; च—लेकिन; सुख—सुख; मानिनः—सोचने वाले।

मनुष्यों की सृष्टि क्रमानुसार नौवीं है। यही केवल एक ही योनि (जाति) ऐसी है और अपना आहार उदर में संचित करते हैं। मानव जाति में रजोगुण की प्रधानता होती है। मनुष्यग दुखीजीवन में भी सदैव व्यस्त रहते हैं, किन्तु वे अपने को सभी प्रकार से सुखी समझते हैं।

तात्पर्य : मनुष्य पशुओं से अधिक कामुक होता है, अतः मनुष्य का यौन जीवन अधिक अनियमित होता है। पशुओं में संभोग का एक नियत काल होता है, किन्तु मनुष्य में ऐसे कार्यों के लिए कोई नियमित समय नहीं है। मनुष्य भौतिक दुखों से छुटकारा पाने के लिए उच्चतर एवं उन्नत स्तर की चेतना प्राप्त हुई होती है, किन्तु अपने अज्ञान के कारण वह यह सोचता है कि उसकी उच्चतर चेतना जीवन की भौतिक सुविधाओं के संवर्धन के निमित्त है। इस तरह उसकी बुद्धि का आध्यात्मिक साक्षात्कार के बजाय पाशविक लालसाओं—खाने, सोने, रक्षा करने तथा संभोग करने—में दुरुपयोग होता है। भौतिक सुविधाओं में अग्रसर होकर मनुष्य अपने को अधिक दुखी अवस्था में ले जाता है, किन्तु भौतिक शक्ति के द्वारा मोहित किये जाने से वह अपने को सदैव सुखी समझता है, भले ही वह कष्ट से क्यों न घिरा हो। मनुष्य जीवन की ऐसी दुखी अवस्था उस प्राकृतिक आरामदेह जीवन से भिन्न है, जिसका भोग पशु तक भी करते हैं।

वैकृतास्त्रय एवैते देवसर्गश्च सत्तम ।
वैकारिकस्तु यः प्रोक्तः कौमारस्तूभयात्मकः ॥ २७॥

शब्दार्थ

वैकृताः—ब्रह्मा की सृष्टियाँ; त्रयः—तीन प्रकार की; एव—निश्चय ही; एते—ये सभी; देव-सर्गः—देवताओं का प्राकट्य; च—भी; सत्तम—हे उत्तम विदुर; वैकारिकः—प्रकृति द्वारा देवताओं की सृष्टि; तु—लेकिन; यः—जो; प्रोक्तः—पहले वर्णित; कौमारः—चारों कुमार; तु—लेकिन; उभय-आत्मकः—दोनों प्रकार (यथा वैकृत तथा प्राकृत)।

हे श्रेष्ठ विदुर, ये अन्तिम तीन सृष्टियाँ तथा देवताओं की सृष्टि (दसवीं सृष्टि) वैकृत सृष्टियाँ हैं, जो पूर्ववर्णित प्राकृत (प्राकृतिक) सृष्टियों से भिन्न हैं। कुमारों का प्राकट्य दोनों ही सृष्टियाँ हैं।

देवसर्गश्चाष्टविधो विबुधाः पितरोऽसुराः ।
गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा यक्षरक्षांसि चारणाः ॥ २८॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च विद्याधाः किन्नरादयः ।
दशैते विदुराख्याताः सर्गास्ते विश्वसृक्कृताः ॥ २९॥

शब्दार्थ

देव-सर्गः—देवताओं की सृष्टि; च—भी; अष्ट-विधः—आठ प्रकार की; विबुधाः—देवता; पितरः—पूर्वज; असुराः—असुरगण; गन्धर्व—उच्चलोक के दक्ष कलाकार; अप्सरसः—देवदूत; सिद्धाः—योगशक्तियों में सिद्ध व्यक्ति; यक्ष—सर्वोत्कृष्ट रक्षक; रक्षांसि—राक्षस; चारणाः—देवलोक के गवैये; भूत—जिन्न, भूत; प्रेत—बुरी आत्माएँ, प्रेत; पिशाचाः—अनुगामी भूत; च—भी; विद्याधाः—विद्याधर नामक दैवी निवासी; किन्नर—अतिमानव; आदयः—इत्यादि; दश एते—ये दस (सृष्टियाँ); विदुर—हे विदुर; आख्याताः—वर्णित; सर्गाः—सृष्टियाँ; ते—तुमसे; विश्व-सृक्—ब्रह्माण्ड के स्त्रष्टा (ब्रह्मा) द्वारा; कृताः—सम्पन्न।

देवताओं की सृष्टि आठ प्रकार की है—(१) देवता (२) पितरगण (३) असुरगण (४) गन्धर्व तथा अप्सराएँ (५) यक्ष तथा राक्षस (६) सिद्ध, चारण तथा विद्याधर (७) भूत, प्रेत तथा पिशाच (८) किन्नर—अतिमानवीय प्राणी, देवलोक के गायक इत्यादि। ये सब ब्रह्माण्ड के स्त्रष्टा ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न हैं।

तात्पर्य : जैसाकि *श्रीमद्भागवत* के द्वितीय स्कन्ध में बताया जा चुका है, सिद्धगण सिद्धलोक के निवासी हैं जहाँ के रहने वाले बिना यान के अन्तरिक्ष में यात्रा करते हैं। वे इच्छामात्र से, बिना कठिनाई के, एक लोक से दूसरे लोक में चले जा सकते हैं। अतएव उच्चतर लोगों के निवासी इस लोक के निवासियों की तुलना में कला, संस्कृति तथा विज्ञान के मामले में कहीं श्रेष्ठ हैं, क्योंकि उनके मस्तिष्क मनुष्यों के मस्तिष्कों से श्रेष्ठ हैं। इस सन्दर्भ में उल्लिखित भूतप्रेतों की भी गणना देवताओं में की जाती है, क्योंकि वे असामान्य कार्य करने में सक्षम हैं, जो मनुष्यों के लिए सम्भव नहीं हैं।

अतः परं प्रवक्ष्यामि वंशान्मन्वन्तराणि च
एवं रजःप्लुतः स्त्रष्टा कल्पादिष्वात्मभूर्हरिः ।
सृजत्यमोघसङ्कल्प आत्मैवात्मानमात्मना ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

अतः—यहाँ; परम्—बाद में; प्रवक्ष्यामि—बतलाऊँगा; वंशान्—वंशज; मन्वन्तराणि—मनुओं के विभिन्न अवतरण; च—तथा; एवम्—इस प्रकार; रजः-प्लुतः—रजोगुण से संतृप्त; स्त्रष्टा—निर्माता; कल्प-आदिषु—विभिन्न कल्पों में; आत्म-भूः—स्वयं अवतार; हरिः—भगवान्; सृजति—उत्पन्न करता है; अमोघ—बिना चूक के; सङ्कल्पः—दृढ़निश्चय; आत्मा एव—वे स्वयं; आत्मानम्—स्वयं; आत्मना—अपनी ही शक्ति से।

अब मैं मनुओं के वंशजों का वर्णन करूँगा। स्त्रष्टा ब्रह्मा जो कि भगवान् के रजोगुणी अवतार हैं भगवान् की शक्ति के बल से प्रत्येक कल्प में अचूक इच्छाओं सहित विश्व प्रपंच की सृष्टि करते हैं।

तात्पर्य : विराट जगत भगवान् की अनेक शक्तियों में से एक का विस्तार है। स्त्रष्टा तथा सृष्टि दोनों एक ही परम सत्य (परब्रह्म) के उद्भास हैं जैसाकि *भागवत* के प्रारम्भ में कहा गया है—*जन्माद्यस्य यतः*।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध के अन्तर्गत 'सृष्टि के विभाग' नामक दसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।